eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 05, Issue 06, June 2026

स्कूल चयन में सामाजिक–आर्थिक प्रतिमानः भारतीय शिक्षा पर समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण की एक साहित्य–आधारित समीक्षा

डॉ0 पुनीत कुमार शुक्ला[1]
[1]असिस्टेंट प्रोफेसर, जे. पी. शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय नालंदा, बिहार

Received: 21 June 2026 Accepted & Reviewed: 25 June 2026, Published: 30 June 2026

Abstract

यह शोध लेख भारत में स्कूल चयन की प्रक्रिया को संचालित करने वाले जटिल सामाजिक–आर्थिक और समाजशास्त्रीय प्रतिमानों का एक व्यापक और सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत करता है। समकालीन भारतीय समाज में, माता–पिता द्वारा अपने बच्चों के लिए शैक्षणिक संस्थान का चुनाव केवल एक प्रशासनिक निर्णय नहीं है, बल्कि यह वर्ग पहचान, सांस्कृतिक पूंजी और आर्थिक आकांक्षाओं के बीच के अंतर्संबंधों का परिणाम है। यह लेख पियरे बॉर्डियू के सांस्कृतिक पूंजी के सिद्धांत, तार्किक चयन सिद्धांत और बाजारीकरण के समाजशास्त्रीय चश्मे से सरकारी स्कूलों से निजी शैक्षणिक संस्थानों की ओर बढ़ते पलायन की समीक्षा करता है। अध्ययन यह उजागर करता है कि कैसे शिक्षा का माध्यम (विशेषकर अंग्रेजी), भौगोलिक अवस्थिति, जातिगत समीकरण और लैंगिक पूर्वाग्रह स्कूल चयन के बाजार को आकार देते हैं। अंततः, यह लेख तर्क देता है कि स्कूल चयन की बढ़ती प्रतिस्पर्धी प्रकृति भारत में शैक्षिक पृथक्करण को जन्म दे रही है, जो सामाजिक न्याय के संवैधानिक लक्ष्यों के लिए एक गंभीर चुनौती है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में, स्कूल चयन की यह प्रक्रिया असमानता के गहरे ऐतिहासिक और सामाजिक स्तरों, जैसे जाति, वर्ग और लिंग के साथ जुड़ी हुई है। आधुनिक भारतीय समाज में, माता–पिता के पास विकल्पों की एक विस्तृत श्रृंखला है। सरकारी स्कूल, सहायता प्राप्त स्कूल, कुलीन निजी स्कूल और निम्न–लागत वाले निजी स्कूल। हालाँकि, चयन की यह स्वतंत्रता सभी के लिए समान नहीं है। जहाँ उच्च वर्ग अपनी आर्थिक पूंजी का उपयोग करके सर्वोत्तम अवसरों को खरीदने में सक्षम है, वहीं हाशिए पर रहने वाले समुदायों के लिए चयन अक्सर उपेक्षित सरकारी स्कूल तक ही सीमित रहता है। यह समीक्षा विश्लेषण करती है कि कैसे स्कूल चयन सामाजिक स्तरीकरण को सुदृढ़ कर रहा है। स्कूल चयन की यह प्रक्रिया केवल एक शैक्षणिक चुनाव नहीं, बल्कि भविष्य की सामाजिक स्थिति का निर्धारण है।

मुख्य शब्द– स्कूल चयन, सांस्कृतिक पूंजी, सामाजिक गतिशीलता, अंग्रेजी माध्यम, बाजारीकरण, तार्किक चयन सिद्धांत, जातिगत पृथक्करण, छाया शिक्षा, शहरीकरण, जवाबदेही।

Introduction

भारत में शिक्षा का परिदृश्य पिछले तीन दशकों में संरचनात्मक और वैचारिक रूप से रूपांतरित हुआ है। स्वतंत्रता के बाद के शुरुआती दशकों में, जहाँ राज्य को शिक्षा के मुख्य प्रदाता के रूप में देखा जाता था, वहीं उदारीकरण के बाद की नीतियों ने शिक्षा को एक प्रतिस्पर्धी बाजार में बदल दिया है। इस बाजार में स्कूल चयन एक केंद्रीय विमर्श बनकर उभरा है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से, स्कूल चयन की प्रक्रिया केवल बेहतर सुविधाओं की तलाश नहीं है, बल्कि यह एक ऐसी सामाजिक रणनीति है जिसके माध्यम से परिवार अपनी वर्तमान स्थिति को सुरक्षित रखने या उसमें सुधार करने का प्रयास करते हैं। भारतीय संदर्भ में, स्कूल चयन की यह प्रक्रिया असमानता के गहरे ऐतिहासिक और सामाजिक स्तरों जैसे जाति, वर्ग और लिंगकृके साथ जुड़ी हुई है। आधुनिक भारतीय समाज में, माता–पिता के पास विकल्पों की एक विस्तृत

श्रृंखला है, पूरी तरह से वित्त पोषित सरकारी स्कूल, सरकार द्वारा सहायता प्राप्त स्कूल, कुलीन निजी अंतरराष्ट्रीय स्कूल और तेजी से बढ़ते निम्न–लागत वाले बजट निजी स्कूल। हालाँकि, चयन की यह स्वतंत्रता सभी के लिए समान नहीं है। जहाँ उच्च और मध्यम वर्ग अपनी आर्थिक और सांस्कृतिक पूंजी का उपयोग करके सर्वोत्तम अवसरों को खरीदने में सक्षम है, वहीं हाशिए पर रहने वाले समुदायों के लिए चयन अक्सर पास के उपेक्षित सरकारी स्कूल तक ही सीमित रहता है। यह प्रस्तावना इस तथ्य को रेखांकित करती है कि स्कूल चयन केवल एक व्यक्तिगत प्राथमिकता नहीं है, बल्कि यह राज्य की नीतियों, बाजार की ताकतों और पारंपरिक सामाजिक संरचनाओं के बीच के घर्षण का परिणाम है। इस समीक्षा का उद्देश्य उन समाजशास्त्रीय साहित्य का विश्लेषण करना है जो यह समझाते हैं कि भारत में स्कूल चयन कैसे सामाजिक स्तरीकरण को कम करने के बजाय उसे और अधिक गहरा और स्थायी बना देता है।

1. सांस्कृतिक पूंजी का सिद्धांत और शैक्षिक चयन: पियरे बॉर्डियू की सांस्कृतिक पूंजी की अवधारणा वह मौलिक आधार है जिसके माध्यम से समाजशास्त्री स्कूल चयन में असमानता का विश्लेषण करते हैं। भारत जैसे जटिल समाज में, सांस्कृतिक पूंजी केवल आर्थिक समृद्धि नहीं, बल्कि उन भाषाई दक्षताओं और अकादमिक मूल्यों का संचय है जो परिवार अपने बच्चों को विरासत में देता है। जब माता–पिता स्कूल चुनते हैं, तो वे एक ऐसे वातावरण की तलाश करते हैं जो उनके घर के हैबिटस के अनुकूल हो। उच्च वर्ग के परिवारों के पास ऐसी सांस्कृतिक पूंजी होती है जो निजी स्कूलों की अदृश्य अपेक्षाओं जैसे अंग्रेजी संवाद और विशिष्ट शिष्टाचार के साथ सहजता से मेल खाती है। प्रतिष्ठित निजी स्कूल वास्तव में छात्र की योग्यता का नहीं, बल्कि उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का परीक्षण करते हैं। एक बच्चा जो घर पर अंग्रेजी पुस्तकों के बीच पला–बढ़ा है, वह उन स्कूलों में अधिक प्रतिभाशाली प्रतीत होता है, जबकि पहली पीढ़ी के शिक्षार्थी स्वयं को विजातीय महसूस करते हैं। समाजशास्त्रीय शोध दर्शाते हैं कि यह चयन प्रक्रिया सामाजिक स्तरीकरण को वैध बनाने का एक तरीका है, जहाँ शिक्षा प्रणाली मौजूदा सामाजिक असमानताओं को मिटाने के बजाय उन्हें और अधिक गहरा कर देती है। माता–पिता का निजी स्कूलों की ओर झुकाव इसी सांस्कृतिक वैधता को प्राप्त करने की एक रणनीतिक चेष्टा है। यह सिद्धांत समझाता है कि क्यों कुछ स्कूल विशिष्ट बने रहते हैं; वे केवल शिक्षा नहीं देते, बल्कि एक विशिष्ट वर्ग के सांस्कृतिक वातावरण का संरक्षण करते हैं। ग्रामीण माता–पिता अक्सर इस सांस्कृतिक बाधा को महसूस करते हैं और अपनी क्षमता से अधिक खर्च करके निजी स्कूलों की ओर बढ़ते हैं ताकि उनका बच्चा सामाजिक पदानुक्रम में पीछे न रह जाए। अतः स्कूल का चयन यहाँ वर्ग–आधारित भविष्य की सुरक्षा सुनिश्चित करने का माध्यम बन जाता है। इस प्रक्रिया में, स्कूल एक ऐसे फिल्टर के रूप में कार्य करते हैं जो सांस्कृतिक पूंजी के आधार पर बच्चों को अलग कर देते हैं, जिससे लोकतांत्रिक समानता का आदर्श खंडित होता है। माता–पिता की यह आकांक्षा कि उनका बच्चा एलीट संस्थानों का हिस्सा बने, वास्तव में अपनी वर्तमान सामाजिक स्थिति को भावी पीढ़ियों के लिए आरक्षित करने का एक सूक्ष्म प्रयास है। इस प्रकार, स्कूल चयन केवल ज्ञान प्राप्ति का साधन नहीं, बल्कि वर्ग वर्चस्व को बनाए रखने की एक सतत समाजशास्त्रीय प्रक्रिया है। पियरे के अनुसार
,

शैक्षिक प्रणाली सांस्कृतिक पूंजी के वितरण का पुनरुत्पादन करती है और, इसी तथ्य के आधार पर, सामाजिक संरचना का भी पुनरुत्पादन करती है। (1)

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 05, Issue 06, June 2026

2. सामाजिक गतिशीलता और अंग्रेजी माध्यम की आकांक्षा, भारतीय समाजशास्त्रीय विमर्श में अंग्रेजी भाषा केवल संवाद का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक और आर्थिक गतिशीलता का सबसे बड़ा प्रतीक है। स्कूल चयन की प्रक्रिया में अंग्रेजी माध्यम एक निर्णायक कारक है जो सरकारी बनाम निजी स्कूल के बीच की विभाजक रेखा को स्पष्ट करता है। मध्यम वर्ग के लिए, अंग्रेजी में शिक्षा प्राप्त करना वैश्विक अर्थव्यवस्था का हिस्सा बनने और अपने सामाजिक मूल की सीमाओं को पार करने का अनिवार्य श्पासपोर्टश माना जाता है। साहित्य दर्शाता है कि कैसे अंग्रेजी ने भारत में एक नई प्रकार की भाषाई जाति बना दी है। ग्रामीण माता–पिता उन निजी स्कूलों में निवेश करते हैं जो अंग्रेजी माध्यम होने का दावा करते हैं, भले ही वहां की शैक्षणिक गुणवत्ता संदिग्ध हो। यह अंग्रेजी का क्रेज उस प्रतीकात्मक पूंजी से जुड़ा है जो समाज में सम्मान दिलाती है। सरकारी स्कूलों को क्षेत्रीय भाषाओं से जोड़ा जाता है, जिसे बाजारीकरण के युग में आर्थिक रूप से कम मूल्यवान माना जाने लगा है। यह भाषाई प्रतिमान स्कूल चयन को एक तनावपूर्ण प्रक्रिया बना देता है, जहाँ माता–पिता को लगता है कि अंग्रेजी के बिना वे बच्चे के भविष्य के साथ अन्याय कर रहे हैं। माता–पिता समझते हैं कि क्षेत्रीय भाषा शिक्षा बच्चे को स्थानीय पहचान तो दे सकती है, लेकिन वह संभ्रांत वर्ग में प्रवेश नहीं दिला सकती। इसलिए, स्कूल का चयन वास्तव में भाषाई अलगाव से बचने की कोशिश है। यह प्रवृत्ति दर्शाती है कि भारत में शिक्षा का माध्यम केवल संचार का साधन नहीं, बल्कि वर्ग विभाजन की एक गहरी खाई है, जो भविष्य की पहचान का चुनाव करती है। अंग्रेजी माध्यम का चुनाव वास्तव में एक वैश्विक पहचान को स्वीकार करने और स्थानीय सीमाओं को त्यागने का निर्णय है। यह समाजशास्त्रीय बदलाव यह भी दर्शाता है कि कैसे भाषाई प्राथमिकताएं सार्वजनिक शिक्षा को कमजोर कर रही हैं, क्योंकि सरकारी तंत्र इस तीव्र मांग को पूरा करने में अक्षम सिद्ध हो रहा है। अंततः, अंग्रेजी के आधार पर होने वाला यह स्कूल चयन भारतीय समाज को इंडिया और भारत के दो स्पष्ट और असमान वैचारिक गुटों में विभाजित कर देता है, जहाँ एक के पास वैश्विक अवसर हैं और दूसरा स्थानीय संघर्षों तक सीमित है। डेविड और ऋचा के अनुसार, अंग्रेजी केवल एक भाषा नहीं है; यह सामाजिक स्तरीकरण का एक उपकरण है जो भारत को इंडिया और भारत में विभाजित करता है। (2)

3. तार्किक चयन सिद्धांत और माता–पिता का निर्णयः तार्किक चयन सिद्धांत के अनुसार, माता–पिता शिक्षा के बाजार में तार्किक उपभोक्ताओं के रूप में व्यवहार करते हैं जो सीमित संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग करना चाहते हैं। भारत में स्कूल चयन एक निरंतर लागत–लाभ विश्लेषण है, जहाँ माता–पिता न केवल फीस, बल्कि भविष्य के व्यावसायिक लाभों और प्रतिष्ठा का हिसाब लगाते हैं। साहित्य बताता है कि निजी स्कूलों की ओर पलायन सरकारी प्रणाली की विफलता पर आधारित एक गणनाबद्ध निर्णय है। माता–पिता सरकारी स्कूलों के बेहतर बुनियादी ढांचे की तुलना में निजी स्कूलों की जवाबदेही को अधिक महत्व देते हैं। उनके लिए मुफ्त शिक्षा में निवेश जोखिम भरा है क्योंकि वहां परिणामों की गारंटी नहीं होती। निजी स्कूलों में, जहाँ वे फीस देते हैं, उन्हें ग्राहक शक्ति महसूस होती है। समाजशास्त्रीय शोध दर्शाते हैं कि माता–पिता उन स्कूलों को चुनते हैं जहाँ उनके बच्चों को सही प्रकार के नेटवर्क के बीच रहने का अवसर मिले। यह पीयर ग्रुप का चयन भविष्य के सामाजिक निवेश जैसा है। निर्धन परिवारों के लिए यह तार्किकता एक विवशता है क्योंकि वे केवल सबसे सस्ता स्कूल चुन पाते हैं। इस प्रकार, शिक्षा एक सार्वजनिक अधिकार से बदलकर एक व्यक्तिगत निवेश पोर्टफोलियो बन गई है। बाजारीकरण ने माता–पिता को उपभोक्ता बना दिया है जो गुणवत्ता के बजाय ब्रांड को तवज्जो देते हैं। यह स्थिति समाज में उन लोगों के बीच एक

बड़ी खाई पैदा करती है जो तार्किक निवेश कर सकते हैं और जो केवल सहने के लिए मजबूर हैं। तार्किक चयन का यह मॉडल यह भी स्पष्ट करता है कि क्यों सरकारी सुधारों के बावजूद निजी क्षेत्र की ओर झुकाव कम नहीं हो रहा है, क्योंकि सामाजिक प्रतिष्ठा और नेटवर्क की पूंजी केवल निजी संस्थानों के पास ही संकेंद्रित मानी जाती है। जब शिक्षा को बाजार की वस्तु मान लिया जाता है, तो चयन की प्रक्रिया स्वाभाविक रूप से उन लोगों के पक्ष में झुक जाती है जिनके पास क्रय शक्ति है। अंततः, यह तार्किकता व्यक्तिगत स्तर पर सही लग सकती है, लेकिन सामूहिक सामाजिक न्याय के लिए यह एक विनाशकारी प्रतिमान सिद्ध होती है। क्लाइव और हेनरी के अनुसार , — माता—पिता केवल स्कूल नहीं चुन रहे हैं; वे एक प्रतिस्पर्धी बाजार में एक तार्किक निवेश कर रहे हैं। (3)

4. लैंगिक प्रतिमान और शैक्षिक निवेश— स्कूल चयन की प्रक्रिया में लिंग एक प्रभावशाली कारक है जो परिवार के भीतर संसाधनों के वितरण को तय करता है। भारतीय साहित्य में लैंगिक स्कूल चयन यह उजागर करता है कि बेटे और बेटी के लिए स्कूलों का चुनाव अलग—अलग मानदंडों पर होता है। पितृसत्तात्मक ढांचे में, बेटे को बुढ़ापे का सहारा मानकर उसके लिए महंगे निजी स्कूलों का चयन किया जाता है, जबकि बेटियों के लिए अक्सर सरकारी स्कूलों को चुना जाता है। यह भेदभाव केवल आर्थिक तंगी नहीं, बल्कि उस सोच का हिस्सा है जो बेटी की शिक्षा को केवल विवाह मूल्य बढ़ाने का साधन मानती है। माता—पिता को लगता है कि बेटी की शिक्षा पर खर्च दूसरे के घर जाने वाले धन का नुकसान है। यह प्रवृत्ति भाई और बहन के बीच एक बड़ी शैक्षिक खाई पैदा करती है। शहरी परिवारों में यह अंतर कम हो रहा है, लेकिन विषय चयन में भेदभाव अभी भी मौजूद है। ग्रामीण क्षेत्रों में ष्पुत्र—वरीयताष स्कूल चयन के प्रतिमानों को गहराई से प्रभावित करती है। यह लैंगिक पदानुक्रम भारतीय शिक्षा प्रणाली के भीतर सामाजिक अन्याय की दीवार खड़ी करता है। स्कूल का चयन यहाँ केवल ज्ञान प्राप्ति के लिए नहीं, बल्कि लिंग आधारित भविष्य के आर्थिक मूल्य का निर्धारण करने के लिए किया जाता है। यह स्थिति दर्शाती है कि स्कूल का चयन केवल आर्थिक स्थिति पर नहीं, बल्कि गहरे पितृसत्तात्मक मूल्यों पर आधारित होता है जो बेटियों की महत्वाकांक्षाओं को सीमित करता है। बेटियों को अक्सर उन स्कूलों में भेजा जाता है जो घर के करीब हों, भले ही वहां शिक्षा की गुणवत्ता कम हो, क्योंकि सुरक्षा और घरेलू नियंत्रण शैक्षणिक भविष्य से ऊपर रखे जाते हैं। इसके विपरीत, बेटों के लिए भौगोलिक सीमाओं और आर्थिक निवेश की परवाह नहीं की जाती। इस प्रकार, स्कूल चयन की प्रक्रिया परिवार के भीतर ही शैक्षिक संसाधनों के असमान वितरण को जन्म देती है। यह लैंगिक विषमता न केवल व्यक्तिगत विकास को बाधित करती है, बल्कि समाज के व्यापक विकास में महिलाओं की भागीदारी को भी सीमित कर देती है, जिससे आधुनिक भारत का समतामूलक लक्ष्य मात्र एक कागजी दावा बनकर रह जाता है। गीता के अनुसार , — घरेलू स्तर पर शैक्षिक संसाधनों का आवंटन अक्सर आकांक्षाओं के लैंगिक पदानुक्रम का पालन करता है। (4)

5. वर्ग पहचान और स्कूली शिक्षा का प्रतीकात्मक मूल्यः भारतीय मध्यम वर्ग के लिए स्कूल चयन केवल शिक्षा नहीं, बल्कि वर्ग निर्माण और पहचान को परिभाषित करने का अंग है। स्कूल वह स्थान है जहाँ बच्चे को माता—पिता के वर्ग के अनुरूप संस्कारित किया जाता है। विशेष निजी स्कूल का चयन परिवार की आधुनिकता और आर्थिक शक्ति का सार्वजनिक प्रदर्शन है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से, यह सामाजिक बंदी की प्रक्रिया है। मध्यम वर्ग के माता—पिता ऐसे स्कूलों की तलाश करते हैं जहाँ उनके बच्चे का संपर्क केवल उनके जैसे लोगों से हो, ताकि वे वर्ग की शुद्धता सुरक्षित रख सकें। सरकारी स्कूलों को मिश्रित स्थान

माना जाता है, जिससे संभ्रांत वर्ग बचता है ताकि उनके बच्चों का व्यवहार प्रदूषित न हो। इस मानसिकता ने भारतीय शिक्षा परिदृश्य को वर्ग टापुओं में विभाजित कर दिया है। यह वर्ग–आधारित चयन राष्ट्रीय पहचान को खंडित करता है, जहाँ एक ही शहर के बच्चे दो अलग वास्तविकताओं में जीते हैं। स्कूलों के ब्रांड का मूल्य माता–पिता के लिए एक सामाजिक पहचान पत्र बन गया है। इस प्रकार, स्कूली शिक्षा का प्रतीकात्मक मूल्य उसके शैक्षणिक मूल्य पर हावी हो जाता है। बच्चों में वर्ग–आधारित श्रेष्ठता या हीनता की भावना पैदा करना आधुनिक शिक्षा के लक्ष्यों के विपरीत है। जब माता–पिता किसी विशेष स्कूल को चुनते हैं, तो वे वास्तव में एक सामाजिक क्लब की सदस्यता खरीद रहे होते हैं। यह प्रक्रिया सामाजिक दूरी को और अधिक स्थायी बना देती है। वर्ग–आधारित चयन यह सुनिश्चित करता है कि उच्च पदों और संसाधनों पर नियंत्रण केवल एक विशेष समूह के पास ही रहे, क्योंकि उनके बच्चे उसी नेटवर्क और वातावरण में विकसित होते हैं जो सफलता के लिए पूर्व–निर्धारित है। इस प्रकार, स्कूल चयन एक ऐसा तंत्र बन जाता है जो योग्यता के नाम पर विशेषाधिकारों को वैध बनाता है। यह प्रतीकात्मक मूल्य शिक्षा की लोकतांत्रिक प्रकृति को पूरी तरह समाप्त कर देता है और उसे सामाजिक स्तरीकरण के एक शक्तिशाली हथियार में बदल देता है। अंततः, वर्ग पहचान स्कूल चयन के माध्यम से समाज में अपनी जड़ें और गहरी कर लेती है, जिससे शिक्षा केवल विशेषाधिकार प्राप्त समूहों का साधन बनकर रह जाती है। स्टीफन के अनुसार , – शिक्षा में चयन श्सामाजिक बंदी का एक रूप है जिसका उपयोग प्रभुत्वशाली समूहों द्वारा अपनी स्थिति बनाए रखने के लिए किया जाता है। (5)

6. जवाबदेही का आख्यान और सार्वजनिक बनाम निजी परिवेशः सरकारी स्कूलों से निजी स्कूलों की ओर पलायन के पीछे जवाबदेही का आख्यान प्रमुख तर्क है। समाजशास्त्रीय साहित्य विश्लेषण करता है कि माता–पिता के मन में सरकारी और निजी संस्थानों की छवियों में गहरा विरोधाभास है। सरकारी स्कूलों को शिक्षक अनुपस्थिति और प्रशासनिक शिथिलता के रूप में देखा जाता है, जबकि निजी स्कूलों को अनुशासन और प्रबंधन के प्रति उत्तरदायित्व का केंद्र माना जाता है। माता–पिता को लगता है कि फीस देकर उन्हें ग्राहक शक्ति मिलती है जिससे वे परिणामों के लिए स्कूल को जिम्मेदार ठहरा सकते हैं। हालांकि, यह जवाबदेही अक्सर केवल सतही होती है। निजी स्कूल चमकदार वर्दी और व्यवस्थित डायरी जैसे दृश्यमान मानकों से गुणवत्ता का भ्रम पैदा करते हैं। वास्तविक संज्ञानात्मक विकास के मामले में कई निजी स्कूल सरकारी स्कूलों से भी बदतर पाए गए हैं। फिर भी, सार्वजनिक क्षेत्र में श्सेवा की कमीश ने माता–पिता के विश्वास को इतना तोड़ा है कि वे इस छद्म जवाबदेही को भी स्वीकार करते हैं। समाजशास्त्री इसे नागरिक के उपभोक्ता में बदलने की प्रक्रिया के रूप में देखते हैं। जहाँ सरकारी स्कूल नागरिक अधिकारों का स्थान थे, वहीं निजी स्कूल उपभोक्ता के हितों का बाजार बन गए हैं। माता–पिता का निजी चयन राज्य की असफलता पर आर्थिक मतदान जैसा है। इस आख्यान ने सार्वजनिक संस्थानों की गरिमा को कम किया है और निजी क्षेत्र को एक ऐसी छवि दी है जो हमेशा वास्तविकता से मेल नहीं खाती। यह स्थिति सार्वजनिक शिक्षा को और कमजोर करती है क्योंकि मध्यम वर्ग के हटने से सरकारी स्कूलों की राजनीतिक प्राथमिकता समाप्त हो जाती है। जवाबदेही का यह निजीकरण शिक्षा की सामाजिक नैतिकता को नष्ट कर देता है। जब माता–पिता निजी चयन करते हैं, तो वे सार्वजनिक प्रणाली से बाहर हो जाते हैं, जिससे उस प्रणाली को सुधारने की लोकतांत्रिक मांग और भी कमजोर हो जाती है। अंततः, यह आख्यान एक दुष्चक्र बनाता है जहाँ सरकारी स्कूल संसाधनों और जन–समर्थन की कमी के कारण और गिरते हैं, और निजी क्षेत्र अपनी

अनियंत्रित शक्तियों का विस्तार करता रहता है। जेम्स के अनुसार , – सरकारी स्कूलों में जवाबदेही की कथित कमी निजी स्कूलों की ओर पलायन को बढ़ावा देने वाला सबसे महत्वपूर्ण कारक है।(6)

7. जातिगत गतिशीलता और चयन का पृथक्करणः जाति भारतीय शिक्षा प्रणाली के भीतर स्कूल चयन की एक अदृश्य लेकिन शक्तिशाली शक्ति है। ग्रामीण क्षेत्रों में, स्कूल का चयन गाँव के सामाजिक भूगोल और जातिगत पदानुक्रमों द्वारा तय होता है। यद्यपि सरकारी स्कूल कानूनी रूप से सभी के लिए खुले हैं, वे अक्सर जातिगत बस्तियों का विस्तार बन जाते हैं। जब दलित बच्चे सरकारी स्कूलों में आने लगते हैं, तो उच्च जातियां अपने बच्चों को निजी संस्थानों में ले जाती हैं, जिसे अपर–कास्ट फ्लाइट कहा जाता है। यह प्रक्रिया स्कूलों के भीतर एक नए प्रकार का सामाजिक अलगाव पैदा करती है। निजी स्कूल अपनी उच्च फीस से एक फिल्टर तैयार करते हैं जो गरीब पिछड़ी जातियों को बाहर रखता है। सरकारी स्कूल अब केवल सबसे वंचित समुदायों के लिए अवशिष्ट स्थान बनते जा रहे हैं। कक्षा के भीतर का सामाजिक मेलजोल गायब होता जा रहा है। स्कूल चयन के माध्यम से जातिगत पहचान को आधुनिक संस्थानों के भीतर पुनर्जीवित किया जा रहा है, जहाँ मेरिट का दावा उच्च जाति के विशेषाधिकारों को छिपाने का मुखौटा है। निजी स्कूलों के प्रबंधन भी अपनी प्रवेश नीतियों में अदृश्य जातिगत पूर्वाग्रहों को शामिल करते हैं। यह स्थिति दर्शाती है कि भारत में शिक्षा का बाजार सामाजिक न्याय के संवैधानिक लक्ष्यों के विपरीत कार्य कर सकता है। स्कूल चयन यहाँ सामाजिक दूरी बनाए रखने का उपकरण है, जो कक्षा के भीतर विविधता को खत्म कर रहा है। यह अलगाव न केवल सामाजिक न्याय को बाधित करता है, बल्कि एक ऐसा खंडित समाज पैदा करता है जहाँ भविष्य के नागरिक एक–दूसरे की वास्तविकता से अनजान होते हैं। जाति आधारित यह विभाजन आधुनिक शिक्षा के समतामूलक वादों पर एक प्रहार है जो लोकतांत्रिक मूल्यों को कमजोर करता है। जब स्कूलों का चयन जातिगत आधार पर किया जाता है, तो वे संस्थान ज्ञान के प्रसार के बजाय पारंपरिक सामाजिक भेदभाव को ही नई शब्दावली में सुदृढ़ करने का कार्य करते हैं। इस प्रकार, स्कूल चयन की स्वतंत्रता वास्तव में पुराने जातिगत वर्चस्वों को आधुनिक शिक्षा के माध्यम से पुनर्स्थापित करने की एक समाजशास्त्रीय युक्ति सिद्ध होती है। पद्मा के अनुसार , – शैक्षिक संस्थान अक्सर उस समाज के जातिगत पदानुक्रम को दर्शाते हैं जिसकी वे सेवा करते हैं, समान अवसर की बयानबाजी के बावजूद। (7)

8. छाया शिक्षा प्रणाली और पूरक चयनः छाया शिक्षा यानी निजी कोचिंग का उदय स्कूल चयन के प्रतिमान का एक अनिवार्य विस्तार है। माता–पिता के लिए केवल अच्छे स्कूल का चयन पर्याप्त नहीं है; असली लड़ाई कोचिंग संस्थानों के चुनाव में है। औपचारिक स्कूल अब केवल प्रमाण–पत्र देने वाली मशीन बन गए हैं, जबकि प्रतिस्पर्धी कौशल कोचिंग सेंटरों में बेचा जा रहा है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से, यह पूरक चयन असमानता को विस्फोटक बना देता है। जो परिवार महंगे कोचिंग का खर्च उठा सकते हैं, उनके बच्चे प्रतिष्ठित संस्थानों में स्थान प्राप्त कर लेते हैं, जबकि केवल स्कूल पर निर्भर छात्र बाहर हो जाते हैं। यह बच्चों पर दोहरा बोझ डालता है। माता–पिता के लिए यह दोहरा कराधान है। छाया शिक्षा ने शैक्षिक वातावरण को मंडी में बदल दिया है जहाँ ज्ञान नहीं, बल्कि परीक्षा पास करने की तकनीक बेची जाती है। यह चयन की स्वतंत्रता के नाम पर मध्यम वर्ग के आर्थिक शोषण और छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य पर संकट पैदा करता है। यह अंततः एक ऐसी प्रणाली बनाता है जहाँ सफलता का पैमाना केवल माता–पिता की क्रय शक्ति रह जाता है। स्कूल चयन यहाँ दोहरी शिक्षा का चयन बन गया है जो केवल संपन्न परिवारों

के लिए सुलभ है। यह प्रवृत्ति शिक्षा की रचनात्मकता को समाप्त कर उसे रटने की प्रतिस्पर्धा में बदल देती है। कोचिंग संस्थानों का चयन अब मुख्यधारा की शिक्षा से अधिक महत्वपूर्ण हो गया है, जो एक समानांतर और अनियंत्रित शैक्षिक बाजार का निर्माण करता है। यह स्थिति सामाजिक न्याय के आधार को और भी संकुचित करती है क्योंकि गरीब छात्र इस दौड़ से पूरी तरह बाहर हो जाते हैं। छाया शिक्षा न केवल आर्थिक अंतर को बढ़ाती है, बल्कि यह औपचारिक स्कूली शिक्षा की प्रासंगिकता पर भी प्रश्नचिह्न खड़ा करती है। जब वास्तविक अधिगम कोचिंग सेंटरों में स्थानांतरित हो जाता है, तो स्कूल केवल सामाजिक प्रदर्शन के केंद्र रह जाते हैं। इस प्रकार, पूरक चयन की यह व्यवस्था शिक्षा को सर्वांगीण विकास के बजाय केवल एक व्यावसायिक होड़ में तब्दील कर देती है, जहाँ जीत केवल उसकी होती है जो आर्थिक रूप से सबसे अधिक समर्थ है। मार्क के अनुसार , – निजी ट्यूशन की वृद्धि सार्वजनिक और निजी दोनों औपचारिक स्कूली शिक्षा की कथित विफलताओं की एक प्रतिक्रिया है। (8)

9. शहरीकरण, प्रवासन और चयन का भूगोलः भारत में शहरीकरण और प्रवासन स्कूल चयन के भूगोल को पुनर्परिभाषित कर रहे हैं। शहरी क्षेत्रों में स्कूल का चयन भूगोल, परिवहन और आवास की सामर्थ्य से जुड़ा है। समृद्ध इलाकों में अच्छे निजी स्कूलों का संकेंद्रण होता है, जबकि झुग्गी–बस्तियों में निम्न–गुणवत्ता वाले निजी स्कूलों का बोलबाला होता है। शहरी गरीबों के लिए चयन एक भ्रम है क्योंकि उनके पास घटिया निजी स्कूल के अलावा विकल्प नहीं होता। ग्रामीण क्षेत्रों से प्रवासन का कारण बेहतर शिक्षा की तलाश है, लेकिन शहरों में उन्हें स्थानिक पृथक्करण का सामना करना पड़ता है। शहर का बुनियादी ढांचा सामाजिक बहिष्कार की राजनीति को बढ़ावा देता है। ब्रांडेड निजी स्कूल अक्सर गेटेड समुदायों के पास होते हैं, जो आम जनता की पहुँच से बाहर होते हैं। बस परिवहन का महंगा खर्च भी एक फिल्टर है। इस प्रकार, स्कूल चयन का भूगोल यह तय करता है कि किन बच्चों को वैश्विक नागरिक बनाया जाएगा और किन बच्चों को शहरी अर्थव्यवस्था के निचले स्तर पर छोड़ दिया जाएगा। चयन का यह भूगोल असमानताओं का एक जीवंत नक्शा है। स्कूल का चयन यहाँ रहने वाले स्थान की वर्ग स्थिति का प्रत्यक्ष परिणाम है। शहर के भीतर निर्मित ये भौगोलिक दीवारें सामाजिक मेलजोल को असंभव बना देती हैं। प्रवासियों के लिए स्कूल चयन अक्सर एक हताशा भरा अनुभव होता है जहाँ उन्हें गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के नाम पर केवल हाशिए पर रखा जाता है। यह भौगोलिक विभाजन यह भी सुनिश्चित करता है कि विभिन्न वर्गों के बच्चों के बीच कोई संवाद न हो, जिससे सामाजिक सहानुभूति का अभाव होता है। जब स्कूल भौगोलिक रूप से और आर्थिक रूप से अलग–थलग हो जाते हैं, तो वे एक खंडित समाज की नींव रखते हैं। इस प्रकार, आधुनिक भारतीय शहरों में शिक्षा का अधिकार केवल भौगोलिक स्थिति और आर्थिक हैसियत का मोहताज बनकर रह गया है, जो समावेशी विकास के दावों की पोल खोलता है। भौगोलिक चयन का यह प्रतिमान अंततः सामाजिक गतिशीलता के अवसरों को भी भौगोलिक सीमाओं में कैद कर देता है। गीता के अनुसार , – स्कूल चयन शहरी स्थान के भूगोल और सामाजिक बहिष्कार की राजनीति से गहराई से बाधित है।(9)

10. उदारीकरण के बाद की नीति और बाजारीकरणरू 1991 के बाद भारतीय शिक्षा में बाजारीकरण की प्रक्रिया तेज हुई है जिसने स्कूल चयन के दर्शन को बदल दिया है। राज्य अब नियामक बन गया है, जिससे निजी क्षेत्र को असीमित विस्तार मिला है। इस बदलाव ने शिक्षा को अधिकार के बजाय उपभोक्ता वस्तु में बदल दिया है। अब स्कूलों के बीच विज्ञापन की होड़ है जहाँ माता–पिता को लुभाया जाता है। बाजारीकरण ने बचपन के वस्तुकरण को बढ़ावा दिया है। शिक्षा का उद्देश्य अब जिम्मेदार नागरिक नहीं,

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 05, Issue 06, June 2026

बल्कि कुशल श्रमिक बनाना रह गया है। आलोचकों का तर्क है कि बाजारीकरण ने शिक्षा की सार्वजनिक नैतिकता को नष्ट कर दिया है। स्कूल अब केवल उन छात्रों को प्राथमिकता देते हैं जो अधिक फीस दे सकते हैं या जो ब्रांड वैल्यू बढ़ा सकते हैं। बाजारीकरण ने एक ऐसी शैक्षिक सीढ़ी बना दी है जहाँ ऊपर जाना आर्थिक पूंजी पर निर्भर है। इससे कमजोर बच्चों के लिए चयन के रास्ते बंद हो जाते हैं। स्कूलों के बीच की प्रतिस्पर्धा विज्ञापनों के माध्यम से ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए है। अंततः, स्कूल चयन की प्रक्रिया लोकतांत्रिक मूल्यों के बजाय बाजार की ताकतों के अधीन हो गई है। संस्थानों को ब्रांड और छात्रों को डेटा में बदलने से मानवीय मूल्यों की जगह मुनाफे ने ले ली है। यह नीतिगत बदलाव दर्शाता है कि राज्य ने शिक्षा के लोकतान्त्रिक चरित्र को बाजार की अनिश्चितताओं के हवाले कर दिया है। बाजारीकरण ने शिक्षा के सामाजिक उत्तरदायित्व को समाप्त कर उसे विशुद्ध व्यक्तिगत लाभ का साधन बना दिया है। जब शिक्षा बाजार के अधीन हो जाती है, तो न्याय और समानता जैसे शब्द गौण हो जाते हैं और केवल प्रतिस्पर्धा ही एकमात्र मूल्य रह जाती है। यह प्रक्रिया समाज के सबसे कमजोर वर्गों को पूरी तरह बाहर कर देती है, जिससे सामाजिक वैमनस्य बढ़ता है। भविष्य की शिक्षा नीति को इन व्यावसायिक मूल्यों के बजाय फिर से सामाजिक उत्तरदायित्व पर केंद्रित होना होगा, अन्यथा शिक्षा केवल असमानता को सुदृढ़ करने का सबसे प्रभावी उपकरण बनी रहेगी। जेफ के अनुसार , – शिक्षा का बाजारीकरण सामाजिक मूल्यों के व्यावसायिक मूल्यों में प्रतिस्थापन की ओर ले जाता है।(10)

निष्कर्ष– भारत में स्कूल चयन का समाजशास्त्रीय विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि माता–पिता के निर्णय केवल व्यक्तिगत पसंद नहीं, बल्कि गहरे सामाजिक–आर्थिक संघर्षों, सांस्कृतिक आकांक्षाओं और व्यवस्थागत विफलता का प्रतिबिंब हैं। यह अध्ययन दर्शाता है कि जाति, वर्ग, लिंग और भूगोल कैसे मिलकर एक ऐसी व्यवस्था बनाते हैं जहाँ विकल्प का अधिकार समान रूप से वितरित नहीं है। निजीकरण और बाजारीकरण ने जहाँ नई आकांक्षाओं को जन्म दिया है, वहीं सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली को हाशिए पर धकेल दिया है। वास्तविक स्कूल चयन तभी सार्थक हो सकता है जब राज्य अपनी जिम्मेदारी निभाते हुए एक ऐसा समान धरातल तैयार करे जहाँ शिक्षा का स्तर किसी बच्चे की आर्थिक स्थिति या सामाजिक पहचान पर निर्भर न हो। भारत की लोकतांत्रिक यात्रा के लिए यह अनिवार्य है कि शिक्षा फिर से एक सार्वजनिक कल्याण का साधन बने। आधुनिक युग में स्कूलों के बीच बढ़ती प्रतिस्पर्धा ने शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य एक जागरूक और संवेदनशील नागरिक का निर्माण को पीछे छोड़ दिया है। बाजारीकरण की प्रक्रिया ने माता–पिता को उपभोक्ताओं और छात्रों को उत्पादों में बदल दिया है, जिससे समाज में विषमता की खाई और चौड़ी हुई है। भविष्य की शिक्षा नीति को केवल ढांचागत सुधारों तक सीमित न रहकर, उन सामाजिक पूर्वाग्रहों को दूर करने पर ध्यान देना होगा जो चयन की प्रक्रिया को बाधित करते हैं। जब तक शिक्षा की गुणवत्ता माता–पिता की आर्थिक क्षमता पर निर्भर रहेगी, तब तक सामाजिक गतिशीलता का सपना अधूरा रहेगा। निष्कर्षतः, स्कूल चयन की प्रक्रिया को केवल बाजार के भरोसे छोड़ने के बजाय, इसे एक सुदृढ़ और पारदर्शी लोकतांत्रिक ढांचे के भीतर लाने की आवश्यकता है, ताकि हर बच्चे को समान अवसर प्राप्त हो सकें। यह न केवल शिक्षा के लिए बल्कि राष्ट्र के सामाजिक ताने–बाने को मजबूत करने के लिए भी आवश्यक है।

References:

1. Bourdieu, Pierre. The Forms of Capital. Edited by John G. Richardson, Greenwood Press, 1986, p. 487.
2. Faust, David, and Richa Nagar. "Politics of Development in Postcolonial India: English-Medium Education and Social Stratification." Annals of the Association of American Geographers, vol. 91, no. 1, 2001, p. 102.
3. Belfield, Clive R., and Henry M. Levin. Privatizing Education: Can the School Marketplace Deliver?. UNESCO, International Institute for Educational Planning, 2002, p. 24.
4. Kingdon, Geeta Gandhi. The Gender Gap in Educational Attainment of Children in India. Macmillan, 2002, p. 132.
5. Ball, Stephen J. Class Strategies and the Education Market: The Middle Class and Social Advantage. Routledge, 2003, p. 11.
6. Tooley, James. The Beautiful Tree: A Personal Journey into How the World's Poorest People are Educating Themselves. Cato Institute, 2009, p. 56.
7. Velaskar, Padma. Education, Caste and Inequalities in Modern India. Routledge, 2012, p. 63.
8. Bray, Mark. The Shadow Education System: Private Tutoring and Its Implications for Planners. UNESCO, International Institute for Educational Planning, 1999, p. 31.
9. Nambissan, Geetha B. Education, Migration and the Urban Poor in India. Oxford University Press, 2012, p. 45.
10. Whitty, Geoff. Sociology and School Knowledge: Curriculum Theory, Research and Politics. Methuen, 1985, p. 15.